IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

शब्द की नित्यता एवं अनित्यता के स्वरूप पर तुलनात्मक चर्चा

Dr.Deepak Kumar Gupta
Assistant Professor
Department of Philosophy
Lakshmibai College
University of Delhi

Abstract : इस लेख मे मुख्य रूप से शब्द की व्याख्या करते हुये इस तथ्य पर चर्चा की जायेगी कि शब्द नित्य है या अनित्य, द्रव्य है या गुण तथा इसके उत्पत्ति की प्रक्रिया क्या है?

शब्द के स्वरूप से सम्बन्धित एक पक्ष उसकी नित्यता एवं अनित्यता को लेकर विचार किया जाता है। इस विचार का मूल प्रश्न यह है कि शब्द नित्य है अथवा अनित्य?

मीमांसक, वैयाकरण तथा काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार शब्द अपने मूलस्वरूप में अथवा मूलतत्व के रूप में नित्य है। न्यायवैशेषिक, सांख्य योग, जैन तथा बौद्ध दर्शन के अनुसार शब्द की उत्पत्ति होती है अर्थात् शब्द अनित्य है।

नैयायिकों के अनुसार संयोग एवं विभाग से उत्पन्न होने के कारण शब्द कारण वाला है तथा जो कारणवाला होता है वह उत्पत्ति धर्मवाला होने से अनित्य होता है।[1] शब्द विनाश धर्मवाला है क्योंकि वह उच्चारणकाल में अस्तित्ववान रहकर उच्चारणोपरान्त अस्तित्व में नहीं रहता है। इन्द्रिय की समीपता से गृहीत होने वाला शब्द ऐन्द्रियक कहलाता है।[2] न्यायमतानुसार इन्द्रियाँ शब्द की उत्पत्ति का कारण हैं, शब्द अभिव्यक्त नहीं होता है बल्कि उत्पन्न होता है शब्द की अभिव्यक्ति नहीं होती है क्योंकि इसमें कृतक या कार्य के समान व्यवहार होता है। अतः शब्द में व्यवहार होने से इसकी अनित्यता सिद्ध होती है।[3] शब्द की अनित्यता प्रतिपादित करते हुए नैयायिक कहते हैं कि उच्चारण से पूर्व अनुपलब्धि होने से तथा आवरणादि द्वारा अनुपलब्धि न माने जाने से शब्द अनित्य हैं।[4]

यह इस व्याख्या का तात्पर्य यह है कि उच्चारण के पूर्व शब्द का अभाव रहता है। यदि उच्चारण के पूर्व शब्द विद्यमान होता तो सुनाई अवश्य पड़ता।यदि यह कहा जाये कि जैसे घट आदि पदार्थ विद्यमान होने पर भी दीवार आदि आवरण से आवृत्त हो जाने पर दिखाई नहीं देते, उसी प्रकार उच्चारण से पूर्व विद्यमान होने पर भी किन्हीं आवरणों से आच्छादित होने के कारण शब्द का श्रवण नहीं होता, यह कहना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है क्योंकि दीवार आदि अवरोधक पदार्थो की उपलब्धि होती है किन्तु उच्चारण के पूर्व शब्द के प्रत्यक्ष होने में अवरोधक आवरण उपलब्ध नहीं होता है।[5]

शब्द की नित्यता प्रतिपादित करने में मीमांसकों का मुख्य तर्क यह है कि शब्द नित्य है क्योंकि इसे उत्पन्न होते और नष्ट होते नहीं देखा जाता। उत्पन्न होते और नष्ट होते हुए जो देखा जाता है वह शब्द की अभिव्यक्ति के कारण अथवा अभिव्यंजकों को ही देखा जाता है। उदाहरण के लिए जब हथौड़ा किसी वस्तु पर गिरता है तो हमें शब्द सुनाई देता है। यह शब्द उत्पन्न नहीं होता बल्कि अभिघात द्वारा नित्य रूप से उपस्थित शब्द अभिव्यक्त होता है। अतः अभिव्यंजकों के उत्पन्न होते और नष्ट होते हुए देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि शब्द भी उत्पन्न और नष्ट होते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि चूँकि संसार में भी सभी वस्तुएँ नाशवान है इसलिए शब्द भी नाशवान है।

इस प्रकार शब्द को अनित्य मानने वालों के मत में संयोगादि से उत्पन्न को स्फोट एवं शब्द से उत्पन्न को ध्वनियाँ कहा है।[6]अनित्यवादी के मत ने शब्दज शब्द को ध्वनि कहा है। अन्तर केवल इतना है कि वैयाकरण जिसे प्राकृत–ध्वनि बताते हैं, तार्किक उसे ही वाचक–शब्द मानते हैं और जिन्हें वैयाकरण वैकृत–ध्वनि कहते हैं, तार्किक उसे ध्वनि कहते हैं।[7] अनित्य व नित्य पक्ष में ध्वनि के स्वरूप में भेद की प्रतीति नहीं होती है। अनित्य पक्ष में तो शब्द–उत्पन्न होता है, तब ध्वनि उत्पन्न होती है, फैलती है।[8] नित्य पक्ष में शब्द ध्वनि से व्यंग्य है क्योंकि संयोग विभागज–ध्वनि से व्यंग्य है और संयोग विभागज–ध्वनि से स्फोट को व्यग्य माना है।[9]

व्याकरण दर्शन में शब्द के मुख्यतः दो भेद माने गये हैं– उपादान और अनुपादान। जो शब्द अर्थ विशेष या वस्तु विशेष को बोधित करने के लिए ग्रहण किये जाते हैं, वे उपादान शब्द कहलाते हैं। इन्हें सार्थक या अर्थवान शब्द कह सकते हैं। जिन शब्दों को वक्ता अर्थबोध के लिए ग्रहण नहीं करता वे अनुपादान शब्द है। ऐसे शब्द प्रायः मनुष्य की वाणी से सम्बद्ध नहीं होते हैं। प्रकृति में अपने आप होने वाले शब्द इसी श्रेणी में आते हैं, परन्तु इन्हीं शब्दों को जब कोई श्रोता कुछ अर्थबोध के लिए ग्रहण करता है तो इसमें भी उपादानता आ जाती है। मनुष्य से सम्बन्ध जुड़ने के बाद शायद ही कोई शब्द अनुपादान बना रह सके। इसलिए वैयाकरण इस पर विचार नहीं करते हैं। वह शब्द के स्वरूप पर दो दृष्टियों से विचार करते हैं– श्रवणीयता के पक्ष से और वाचकता के पक्ष से।

शब्द के श्रवणीयता पक्ष अर्थात् ध्वन्यात्मकता को वैयाकरणों ने अनित्य माना है किन्तु इसके वाचक पक्ष को वे नित्य मानते हैं। श्रूयमान ध्वनियाँ इस नित्यता पक्ष में वाचक शब्द की केवल अभिव्यंजक मानी गई हैं।

पतंजलि एवं भर्तृहरि दोनों ने भाषा के सार्थक शब्दों में शब्द के दो रूप माने हैं– ध्वनि और स्फोट। नदी और नगाड़े आदि में केवल ध्वनि की सत्ता होती है न कि स्फोट की। पतंजलि ने स्वीकार किया है कि शब्दों में ध्वनि और स्फोट दोनों की सत्ता होती है। इसमें अल्पता और मानता केवल ध्वनि में ही विद्यमान पायी जाती है। ये गुण स्फोट में नहीं होता है। कुछ शब्दों में ध्वनि और स्फोट दोनों रूप होते हैं, परन्तु दोनों में से ध्वनि–मात्रा ही लक्षित होती है।[10] भर्तृहरि भी इसी प्रकार उपादान या वाचक शब्द में भेद मानते हैं, उनमें से एक ध्वनि, व्यंजक होने के कारण शब्दों का निमित्त है और दूसरा स्फोट रूप अर्थग्राहक है।[11]

डॉ॰ एस॰डी॰ जोशी का विचार है कि पतंजलि ने भाषा के विश्लेषण में शब्द के तीन भेदों को माना है। ध्वनि, स्फोट और वाचक या संघातात्मक शब्द। ध्वनि, मन्द–प्रकाश की तरह क्रमशः क्षीण और विलीन हो जाती है। जिस प्रकार मन्द–प्रकाश दूर पड़ने पर क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार ध्वनि की भी स्थिति होती है। शब्द के नित्य पक्ष में ध्वनि यथोत्तर अप्रचय प्राप्त होने वाली अभिव्यक्ति में समर्थ द्रुतादि वृत्ति में व्यवस्था का कारण और अन्त में विनाशशील या विध्वंसस्वस्पाद्ध है।[12] ध्वनि का स्वरूप प्रचय और अप्रचय रूप में पाया जाता है, परन्तु व्यवहार में अल्पता, महानता आदि गुण अथवा "ह्रास और वृद्धि शब्द में समझा जाता है।[13] भेरी दण्डाभिघात से उत्पन्न ध्वनि दूरवर्तिनी होती है, अर्थात् दूर तक सुनाई देती है। कंसाभिघात से उत्पन्न ध्वनि नजदीक तक ही सुनाई पड़ती है।[14] ऐसा प्रतीत होता है कि ध्वनि की अल्पता, महानता स्वभाव के कारण ही शब्द को भी व्यवहार में अल्प व महान् कह दिया जाता है।

भर्तृहरि ने कुछ विद्वानों के मत का उल्लेख करते हुए दीप–प्रभा की स्थिति के साथ ध्वनि और शब्द को भी बताया है। जिस प्रकार दूरस्थ–दीप की प्रभा ही दिखाई देती है किन्तु दीप नहीं, उसी प्रकार ध्वनि सहित व्यक्त–स्फोट, श्रुतिगोचर नहीं हो पाता किन्तु ध्वनि ही श्रुतिगोचर होती है।[15] डॉ॰गौरीनाथ शास्त्री ने भर्तृहरि के मत की पुष्टि में ध्वनि को स्फोट का प्रतिनिधत्व रूप में घोषित किया है। क्योंकि जब ध्वनि श्रुतिगोचर होती है तब वह स्फोट–युक्त होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शब्द, ध्वनि और स्फोट के माध्यम से अर्थ का बोध कराता है

परन्तु यहाँ यह समस्या आती है कि हम शब्द को द्रव्य रूप में स्वीकार करें या गुण रूप में। इसलिए शब्द की द्रव्यरूपता आदि की चर्चा आवश्यक है।

शब्द के तात्विक स्वरूप पर चर्चा करते हुए उसके द्रव्यता आदि पर प्रश्न उठता है कि शब्द द्रव्य है अथवा गुण? कुछ दार्शनिक निकायों ने इसे द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है तो कुछ ने इसे गुण के रूप में स्वीकार किया है। शब्द को द्रव्य रूप मानने वालों में वैयाकरण, कुमारिलभट्टद्व ;मीमांसाद्ध तथा कश्मीर शैवदर्शन प्रमुख है। शब्द को गुण मानने वालों में प्रभाकर मीमांसा तथा न्याय–वैशेषिक दर्शन प्रमुख हैं। जैनदर्शन अपने अनेकान्तवादी दृष्टिकोण के अनुरूप किसी दृष्टि से शब्द को द्रव्य तथा किसी दृष्टि से शब्द को गुण मानता है।

नैयायिकों के अनुसार शब्द आकाश का गुण है तथा इस बात का निषेध तर्क द्वारा नहीं किया जा सकता है।[16] वैशेषिकों ने शब्द को आकाश का गुण कहा तथा इसे क्षणिक माना है।[17] उनके अनुसार संयोग, विभाग तथा शब्द से इसकी निष्पत्ति मानी जाती है।[18] प्रभाकर मीमांसकों के अनुसार शब्द गुण है क्योंकि यह श्रोत देश में प्राप्त होता है। श्रोत आकाशात्मक है, इसलिए आकाशात्मक श्रोत का गुण शब्द है।[19] पार्थसारथि मिश्र ने शब्द को गुण तो माना किन्तु आकाश का गुण न मानकर इसे वायु का गुण माना है।[20]

वैयाकरणों के अनुसार शब्द द्रव्य है क्योंकि शब्द तत्व ब्रह्म है।[21] संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका ज्ञान शब्द से ओत–प्रोत न हो।[22] भर्तृहरि का मानना है कि शब्द द्रव्य विशेष है। उल्लेखनीय है कि शब्द को किसी ने वायु का परिणाम माना है तो किसी ने अणु का परिणाम कहा है तथा किसी ने इसे ज्ञान का परिणाम स्वीकार किया है। परन्तु भर्तृहरि के अनुसार यदि शब्द को वायु का परिणाम माना जाए तो वायुरूप द्रव्य का परिणाम द्रव्यरूप ही होगा, इस दृष्टि से शब्द द्रव्यरूप है। यदि शब्द को अणु का परिणाम कहा जाए तो भी शब्द द्रव्यरूप ही होगा क्योंकि अणु तत्व भी द्रव्य का ही अन्तिम अवयव होता है। गुण आदि पदार्थ तो निरवयव होते है। अतः शब्द तन्मात्रा रूप अणुओं से निर्मित होने के कारण शब्द तत्व को द्रव्य ही कहा जायेगा।

भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द को ज्ञान का परिणाम मानने से भी उसकी द्रव्यरूपता सिद्ध होती है। यदि ज्ञान जिसका कि परिणाम शब्द है, अन्तःकरण की परिणामरूप वृत्ति है तो अन्तःकरण ;मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के द्रव्यरूप होने से उसका परिणाम वृत्तिरूप ज्ञान भी द्रव्य है। भर्तृहरि कहते हैं कि जैसे वायु के सूक्ष्म परमाणु व्यंजन के आघात से संघात भाव को प्राप्त हो जाते है वसै ही शब्द परमाणु भी ताल्वादि स्थानों में जिह्वा के आघात से संघीभूत होकर श्रोत्रेन्द्रिय से उपलब्ध होते हैं।[23] इससे स्पष्ट होता है कि शब्द द्रव्य विशेष है। शब्द के पास परमाणु का होना तथा उसका संघात होना यह सब बिना शब्द के द्रव्यत्व के संभव नहीं हो सकता है।[24] यह तो स्पष्ट हो गया कि शब्द द्रव्यरूप है। यहाँ अगला प्रश्न यह है कि द्रव्यरूप शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार होती है।

न्यायदर्शन में शब्द को आकाश–द्रव्य का गुण माना गया है तथा शब्द के दो भेद माने गये हैं– ध्वनिमात्र तथा वर्ण।[25] वैशेषिक दर्शन में भी शब्द के इसी प्रकार के दो भेद किये गये हैं।[26] इन दोनों दर्शनों के अनुसार यह दोनों ही प्रकार का शब्द पहले संयोग अथवा विभाग द्वारा उत्पन्न होता है तथा उसके पश्चात् उसी संयोगज अथवा विभागज शब्द से शब्द–संतान का जन्म होता है।[27] इस प्रकार न्याय–वैशेषिक के अनुसार हमारा अभीष्ट शब्द कण्ठ, तालु आदि के साथ प्राण–वायु के अभिघात से उत्पन्न होता है और वर्णात्मक है तथा वक्ता के उच्चारण से उत्पन्न ये वर्ण ही शब्द–सन्तान–परम्परा से श्रोत–प्रत्यासन्न होने पर श्रोता द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार ये वर्ण ही समस्त भाषा–रूप शब्द की आधरभूत इकाई है जो उत्पन्न होने के कारण स्वरूपतः अनित्य है। न्याय–वैशेषिक मत में शब्द की अपूर्व उत्पत्ति है न कि पहले से ही विद्यमान शब्द की अभिव्यक्ति। संयोग और विभाग से जो शब्द उपलब्ध है वह वर्ण–ध्वनि रूप है और कारण–सामग्री से उत्पन्न होता है न कि अभिव्यक्त से।

सांख्यदर्शन सत्यकार्यवादी होने के कारण कार्य की अपूर्व उत्पत्ति न मानकर कारण सामग्री से उसकी अभिव्यक्ति स्वीकार करता है। सत्यकार्यवाद के अनुसार वस्तु का आविर्भाव और तिरोभाव होता है उसका अपूर्व उत्पाद और सर्वथा नाश नहीं होता है। यही बात शब्द पर भी लागू होती है। सत्यकार्यवाद के अनुसार शब्द की भी अभिव्यक्ति होती है। शब्द की अभिव्यक्ति मानते हुए भी सांख्यदर्शन शब्द की नित्यता को नहीं मानता है।[28] उसके अनुसार कार्य अन्ततः अपने कारण में लीन हो जाता है तथा इस अर्थ में उसका विनाश हो जाने से उसे नित्य नहीं कहा जा सकता है। शब्द भी कार्य है अतः वह नित्य नहीं है।[29]

सांख्यदर्शन के अनुसार सत्व, रजस् तथा तम्स, इन तीन गुणों की साम्यावस्था प्रकृति कहलाती है। प्रकृत का प्रथम विकार 'महत्तत्व' है। महत् का विकार 'अहंकार' है। इस अहंकार से एक ओर सत्त्वप्रधान ग्यारह इन्द्रियों की सृष्टि होती है, तो दूसरी ओर तमः प्रधान पंच्च तन्मात्रा उत्पन्न होते हैं। इनमें प्रथम शब्द तन्मात्रा है जिससे स्थूल आकाश नामक भूत की उत्पत्ति होती है। वाचस्पति मिश्र ने शब्द को इस स्थूल आकाश का गुण माना है।[30] द्वितीय तन्मात्रा उत्पन्न स्पर्शतन्मात्रा है। शब्दतन्मात्रा सहित इस स्पर्शतन्मात्रा से शब्द और स्पर्श गुण वाले वायु की उत्पत्ति होती है। रूप–तन्मात्रा तृतीय तन्मात्रा है। पूर्व के दोनों तन्मात्राों के साथ इस रूप–तन्मात्रा से शब्द, स्पर्श और रूप गुण वाले अग्नि की उप्पत्ति होती है। चतुर्थ रसतन्मात्रा है। पहले के तीन तन्मात्राों सहित इस चतुर्थ तन्मात्रा से शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुणों वाले जल की उत्पत्ति होती है। इन चार तन्मात्राों सहित पंचम तन्मात्रा, गन्ध तन्मात्रा से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण वाली पृथिवी पैदा होती है। इस स्थूल आकाश आदि पच्चमहाभूतों से ही समस्त पदार्थो की सृष्टि होती है जो कि तत्त्वान्तर न होकर इन्हीं महाभूतों के प्रकार–मात्रा होते हैं।[31]

इस प्रकार सांख्यदर्शन के अनुसार विश्व के सभी स्थूल, घट, पट आदि पदार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का समुदाय मात्रा हैं। इससे शब्द विषयक सांख्य का यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि घण्टा आदि द्रव्यों तथा वाक् इन्द्रियों में गन्धादि के समान शब्द भी पूर्वरूप से विद्यमान रहता है तथा दण्ड आदि और वायु के अभिघात से वही पूर्वस्थित शब्द अभिव्यक हो जाता है।

मीमांसक भी सांख्यदर्शन के समान शब्द की अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं परन्तु वे सांख्यदर्शन से भिन्न शब्द को नित्य मानते हैं। मीमांसक के अनुसार वर्ण–रूप शब्द ध्वनि द्वारा व्यक्त होता है और नित्य है। शब्द का आविर्भाव और तिरोभावमात्रा होने से उनकी दृष्टि में शब्द नित्य है। यद्यपि सांख्य और मीमांसक दोनों ही शब्द की अभिव्यक्ति होना मानते हैं किन्तु एक ही दृष्टि में शब्द अभिव्यक्त होकर भी अनित्य है तो दूसरे की दृष्टि में वह अभिव्यक्त होने से ही नित्य है। इस अन्तर का कारण यह है कि मीमांसकों की दृष्टि में शब्द के दो रूप हैं– व्यंजक ध्वनि और व्यंग्य ध्वनि।

इसके विपरीत सांख्य मत में शब्द का एक ही रूप है। कारणावस्था में वही अव्यक्त रहता है तो कार्यवस्था में वही व्यक्त हो जाता है। सांख्यदर्शन के अनुसार कार्य दशा तथा व्यक्त दशा एक ही वस्तु के दो नाम है। उसके लिए व्यक्त ही कार्य है। मीमांसादर्शन के अनुसार कार्मता ध्वनि की होती है और अभिव्यक्ति उससे पृथक् वर्ण की होती हैं कार्य होने से ध्वनि अनित्य है जबकि उससे व्यंग्य वर्ण नित्य है। सांख्य का शब्द ध्वनिरूप ही है जो अभिव्यक्त होने पर भी कार्य होने के कारण अनित्य है।

बौद्ध दर्शन में शब्द को ध्वनिरूप तथा उत्पन्न और नष्ट होने वाला माना गया है। बौद्धों ने शब्द की आकाश में व्यापकता अथवा उसका गुण होने का प्रतिषेध किया है। उसके अनुसार शब्द निरवयव है तथा दैशिक व्याप्ति से रहित है। बौद्ध मत में तो सत्तामात्रा की क्षणिकता स्वीकार की जाती है। इसके कारण शब्द निरवयव होने के कारण जहाँ देश में व्याप्त नहीं रह सकता वही क्षणिक होने से कालिक व्याप्ति से भी रहित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्ध क्षणिक ध्वनि को ही शब्द मानते हैं। धर्मकीर्ति ने शब्द को ध्वनिरूप तथा अनित्य माना है और उसी की वाचकता को स्वीकार किया है।

जैनदर्शन में शब्द को पुद्गलों का कार्य मानते हुए द्रव्य रूप माना गया है। जैनदर्शन में पुद्गल एक भौतिक पदार्थ है और उसे परिमाणविशेष से मुक्त माना गया है। इस पुद्गल की उत्पत्ति परमाणुओं से होती है। ये परमाणु परिणाम रहित एवं नित्य माने गये है। शब्द पुद्गल कार्य हैं तथा ये पुद्गलों में उसी प्रकार आश्रित होते हैं जैसे कोई भी कार्य–द्रव्य अपने कारण द्रव्य में आश्रित रहता है।[32]

वाक्यपदीय में शब्दोत्पत्ति के विषय में तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया हैं।[33]

शब्द वायु का परिणाम है
शब्द अणुओं का परिणाम है
शब्द ज्ञान का परिणाम है।

प्रथमतानुसार जब वक्ता के मन श्रोता को अर्थबोध कराने की इच्छा उत्पन्न होती है तो इस इच्छा से उसके मन में प्रयत्न उत्पन्न होते है, उस प्रयत्न के द्वारा उत्पन्न क्रिया से प्रेरित वायु उपर की ओर मस्तिष्क देश में जाता है, आगे जाने का स्थान न पाकर वह वायु मुख के अन्तर्गत कण्ठ, तालु इत्यादि स्थानों में टकराकर शब्दरूप में परिणत हो जाता है।[34]

द्वितीय मत की व्याख्या में भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द परमाणु मिलकर समुदाय रूप हो जाते हैं तथा समुदाय ही स्थूल शब्द के रूप में परिणत हो जाते हैं इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अदृष्ट से प्रेरित होकर प्रयत्न करने से प्रेरित वायु के द्वारा इनका समुदाय बन जाता है तथा यह समुदाय स्थूल शब्द के रूप में वैसे ही परिणत हो जाता है जैसे वायु से प्रेरित मेघमाला देखते–देखते धनीभूत हो जाती है।[35]

तृतीय मतानुसार शब्द को ज्ञान का परिणाम मानते हुए वैयाकरण कहते हैं सृष्टि के पहले एक शब्दतत्व ही था जिसके बाद में 'वाक्' एवं 'मन' दो विभाग हुए। मन का वृत्तिरूप परिणाम ज्ञान कहलाता है तथा उसका आश्रय होने के कारण मन को ज्ञाता कहा जाता है। यह ज्ञाता सूक्ष्म वाक् तत्व से अनुषक्त माना जाता है। यह शरीर के अन्दर स्थित तेज से पाक् को प्राप्त होकर प्राणवायु में प्रवेश का तद्रूप हो जाता है। इस प्रकार अन्तःकरण रूप मन के सूक्ष्म शब्दात्मकत्व धर्म से अर्थात् सूक्ष्म धर्म रूप हो जाने से वह प्राणवायु उसी शरीरान्तर्वर्ती तेज की सहायता से स्थूल शब्द रूप में परिणत होने लगता है। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से लौह पिण्ड में दहकता शक्ति आ जाती है, वैसे ही सूक्ष्म शब्द रूप मनस्तत्त्व के सम्बध से प्राणवायु भी शब्दात्मक हो जाता है। वही प्राणवायु कण्ठताल्वादि स्थानों में नानाविध अ, आ, ई इत्यादि ध्वनि रूप से अपने को अभिव्यक्त करता हुआ उन्हीं वर्णो में लीन हो जाता है।[36] वैयाकरणों के अनुसार उरः, कण्ठ, शिरः जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ तथा तालु में आठ कण्ठादि स्थान है। भर्तृहरि ने शब्दोत्पत्ति में स्थान तथा प्रयत्न के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि उस वाचक शब्द की शक्ति अर्थात् उसका सूक्ष्म स्वरूप सर्वप्रथम बुद्धि में स्थित होता है, इसके पश्चात् बुद्धि से प्रेरित होकर बुद्धि के तादात्म्य को प्राप्त प्राणवायु में वह व्यवस्थित होता है। इसके पश्चात् कण्ठ आदि स्थानों में आघात होने से वही सूक्ष्म शब्द स्थूल वर्ण रूप से अभिव्यक्त होते हैं। जैसे पृथ्वी क्रम से ही घट आदि कार्यरूप में आती है। जैसे बीज अंकुर आदि क्रम से ही वृक्षरूप में आता है उसी प्रकार सूक्ष्म शब्द भी क्रम से ही स्थूल शब्द के रूप में आता है, एक ही बार में नहीं आ जाता।[37]

उपर्युक्त समस्त व्याख्या के पश्चात् निष्कर्षतः हम देखते हैं कि शब्द से जुड़ी उसकी नित्यता और अनित्यता के सम्बध में ,दर्शन में, जो दार्शनिक शब्द की उत्पत्ति को स्वीकार करता है वह शब्द को अनित्य मानता है जैसे– न्यायवैशेषिक, सांख्य–योग, जैन तथा बौद्ध दर्शन। दूसरी ओर जो शब्द को अर्विभावित/अभिव्यक्ति स्वीकार करता है उनका मानना है कि शब्द अपने मूलस्वरूप में अथवा मूलतत्त्व के रूप में नित्य है। शब्द की नित्यता और अनित्यता से जुड़ा एक अन्य प्रश्न भी उठता है कि शब्द को द्रव्य स्वीकार किया जाए या गुण? शब्द को गुण रूप स्वीकार करने वालों में प्रभाकर मीमांसा तथा न्याय–वैशेषिक प्रमुख हैं। नैयायिकों का मानना है कि शब्द आकाश का गुण

है एवं क्षणिक भी है। प्रभाकर के अनुसार भी शब्द गुण है क्योंकि यह श्रोत देश से प्राप्त होता है। श्रोत आकाशात्मक है, इसलिए आकाशात्मक श्रोत का गुण शब्द है। पार्थसारथी मिश्र ने तो शब्द को गुण माना है किन्तु आकाश का गुण मानने के बजाए वायु का गुण मानना अधिक तर्कसंगत समझा। वहीं दूसरी ओर वैयाकरण कुमारिलभट्टद्व तथा काश्मीर शैवदर्शन शब्द को द्रव्य रूप स्वीकार करते हैं। वैयाकरणों का मानना है कि शब्द द्रव्य है क्योंकि शब्द तत्त्व ब्रह्म है। यहाँ भर्तृहरि का मानना है कि शब्द द्रव्य विशेष है और शब्द को द्रव्य सिद्ध किया है।

शब्द की उत्पत्ति के सन्दर्भ में नैयायिकों का मानना है कि शब्द पहले संयोग अथवा विभाग द्वारा उत्पन्न होता है तथा उसके पश्चात् उसी संयोगज अथवा विभागज शब्द से शब्द–संतान का जन्म होता है। सांख्य दर्शन सत्यकार्यवादी होने के कारण शब्द की उत्पत्ति न स्वीकार करके उसकी अभिव्यक्ति को स्वीकार करता है। इस धारा में मीमांसक भी शब्द की अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं परन्तु ये सांख्यदर्शन से भिन्न शब्द को नित्य स्वीकार कर लेते हैं। यहाँ बौद्ध दर्शन में शब्द को ध्वनिरूप तथा उत्पन्न और नष्ट होने वाला अर्थात् अनित्य स्वीकार करते हुए तथा गुण होने का प्रतिषेध करते हुए क्षणिक ध्वनि को ही शब्द मानते हैं। वहीं जैन दर्शन में शब्द को पुद्गलों का कार्य मानते हुए द्रव्य रूप माना गया है। जबकि वाक्यपदीय में शब्देत्पत्ति के विषय में तीन सिद्धन्तों का उल्लेख है। व्याकरण दर्शन में शब्द के दो भेद स्वीकार किये गये हैं– स्फोट तथा ध्वनि। यहाँ ध्वनि को विभाजित करते हुए दो रूपों में स्वीकार किया गया है यथा– प्राकृत ध्वनि एवं वैकृत ध्वनि। प्राकृत ध्वनि स्फोट का अभिव्यंजन करके समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् उस स्फोट की आचिरकाल या चिरकाल तक स्थिर करने का कार्य वैकृत ध्वनि करती है। वैकृतध्वनि प्राकृत ध्वनि के नष्ट हो जाने पर उत्पन्न होती है।

संदर्भ

1. उत्पत्तिधार्मकत्वादनित्यः शब्द इति, भूत्वा न भवति विनाशधर्म्मक इति। –वात्स्यायनभाष्य 2/2/13, पृष्ठ–143

2. इन्द्रियप्रत्यासत्तिग्राह्यम् ऐन्द्रियकमिति। –न्यायवर्तिका, 2/2/14, पृष्ठ–287

3. तत्राधः शब्दः संयोगविभागहेतुकः तस्माच्छब्दान्तरणि कदम्बगोलक न्यायेन
सर्वदिक्कानितेभ्यः शब्दो मन्दतरतमादि न्यायेनाश्रया प्रतिबन्धमनुविधियमानः प्रादुरस्ति ततोन्त्यस्यातिमान्धच्छब्दान्तरोत्पत्तिशक्तिविधतो येन केनचित् प्रतिबन्धत् भवतीति।
–न्यायवर्तिक 2/2/24, पृष्ठ–289

4. सोयमुच्यार्यमाणः श्रूतये, श्रूयमाणश्चाभूत्वा भवतीति अनुमीयते। उफर्ध्व चौच्चारणत्राश्रूयते– स भूत्वा न भवति अभावात्रा श्रूयत इति। कथम्? आवरणाद्यमुलब्धरित्युक्तम्।
तस्मादुत्पत्तितिरोभावधर्म्मकः शब्द इति। –वात्स्यायनभाष्य2/2/18, पृष्ठ–149

5. अनुपलम्भाद्धेतोः यथावरणानुपलब्धिसद्भावस्तदा तस्मादेवानुपलम्भात् निमित्तादावरणानुपपत्तिरपि नास्तीति। –न्यायतात्पर्यदीपिका 2/2/23, पृष्ठ–56

6. यः संयोगविभागाभ्या करणैरूपजन्यते।
सः स्पफोटः शब्दजाः शब्दाध्वनयोन्यैरुदाहृताः।। –वा॰प॰ 1.102

7. वैयाकरणाय प्राकृतध्वनिरिति व्यवहरन्ति तमेव तार्किकाः वाचक शब्दं मन्यते यं च ते वैकृतध्वनिरिति व्यवहरन्ति त च तार्किकाः ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। –वा॰प॰ 1/102 सूर्यकांत शुक्ल टीका, पृष्ठ–113

8. वही, 1/102

9. नित्य पक्षे तु संयोगजविभागजध्वनि व्यंग्यः स्पफोटः। एकेषा संयोगविभागज ध्वनिसम्भूतनादभिव्यग्यः। स्पफोटरूपानुग्राहिणस्तु यथोत्तरमपचीयमानाभिव्यक्ति–
सामर्थ्यादुतादिवृत्ति भेद व्यवस्था हेतवो{पचयात्मका ध्वनयः। –वही, 1/102, हरिवृत्ति, पृष्ठ–157

10. ध्वनिः स्पफोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते।
अल्पो महांश्च केषां चिदुभयं, तत् स्वभावतः।। –महाभाष्य 1.1.69

11. द्धावुपादानषब्देशु शब्दौ शब्द विदो विदुः।
एको निमित्तं शब्दानामपरोर्थे प्रयुज्यते।। –वा॰प॰ 1.44

12. मन्दप्रदीपप्रकाषितरूप कल्पाः क्रमेण प्रध्वंसमाना ये वर्णश्रुतिविभाजन्ति ते ध्वनय
इत्युच्यन्ते।। –वा॰प॰ 1.44

13. अल्पे महति वा शब्दे स्पफोटकालो न भिद्यते।
परस्तु शब्दसन्तानः प्रचयापचयात्मकः।। –वा॰प॰ 1.103

14. कस्य चिद्धि भेरि दण्डाभिघातजस्येव कार्यपरम्परा दूरमनुपतति। कश्चिद् तु लोक कंसाभिघात इव प्रंत्यासन्नदेश ग्राह्यं दीर्घकालं सनतानमविच्छेदेनारभते। –वा॰प॰, 1. 103, हरिवृत्ति, पृष्ठ–159

15. दूरात् प्रभेव दीपस्य ध्वनिमात्रां तु लक्ष्यते।
घण्टादीना च शब्देषु व्यक्तो भेदः स दृश्यते।। –वा॰प॰ 1.104

16. यदिदं नाकाशगुणः शब्द इति प्रतिषिधयते, अयमनुपपत्राः प्रतिषेध अस्पर्शत्वाच्छब्दस्य।
–न्याय भा॰, पृष्ठ–100

17. शब्दोवडम्बरगुण क्षणिकः प्रदेशवृत्ति। –प्रशस्तपाद भा॰, पृष्ठ–692

18. संयोगनादविभागाच्च शब्दाच्च शब्द निष्पत्तिये। –वै॰सू॰ 2/3/3

19. परिषेष्यात् समवायः प्राप्तिः आकाशगुणः शब्दः। –प्रकरणपंजिका, पृष्ठ–424

20. सत्यपि गुणत्वे वायुगुणत्वात्। –न्यायरत्नमाला, पृष्ठ–38

21. वा॰प॰ 1/1

22. वही 1/123

23. अजयप्रवृत्तिर्यः शब्दः सूक्ष्मत्वात्रोपलभ्यते।
व्यंजनाद वायुरिव स स्वनिमित्तात् प्रतीयते।। –वा॰प॰ 1/117

24. यथावायुपरमाणवः सूक्ष्मण्यंजनामिधतेन सहन्यन्ते, तथा शब्दे परमाणवः करणाभिघातात् सहन्यमानाः प्राचिता व्यक्तश्च श्रोत्रोणोपलभ्यन्ते इति। –वा॰प॰ 1/116

25. द्विविध्च्चायं शब्दो वर्णात्मको ध्वनि–रूपश्च। –न्याय–भाष्य 2/2/40

26. द्विविधे वर्ण–लक्षणों ध्वनिलक्षश्च। तत्राकारादिर्वर्णलक्षणः शघ्खादि–निमित्तो
ध्वनिलक्षश्च।। –पदार्थसंग्रह, शब्दनिरूपण, पृष्ठ–645

27. संयोगाद् विभागाच्च शब्दाच्च शब्द–निष्पत्तिः। –वैशेषिकसूत्र 2/2/31

28. न शब्दनित्यत्वं कार्यता–प्रतीतेः। –सांख्य–षडध्यायी 5/58

29. नाशः कारणलयः। –सांख्य–षडध्यायी 1/121

30. सांख्यतत्त्वकौमुदी, का॰ 38

31. वही, का॰ 16

32. सत्तामात्रानुबन्धित्वात्राषस्यानित्यता ध्वनेः। –प्रमाणवर्तिका, स्वार्थानुमान, पृष्ठ–270

33. वायोरणूनां ज्ञानस्य शब्दत्वापत्तिरिष्यते।
कैश्चिद्दर्शनेन भेदो हि प्रवादेष्वनवस्थितः। –वा॰प॰ 1/107

34. लब्धेक्रियः प्रयत्नेन वक्तुरिच्छानुवर्तिना।
स्थानेष्वाभिहितो वायुः शब्दत्वं प्रतिपद्यते।। –वा॰प॰ 1/108

35. अशावः सर्वशक्तित्वाद् भेदसंसर्गवृत्तयः। छायातपतमः शब्दभावेन परिणामितः। स्वशक्तौ व्यज्यमानाया प्रयत्नेन समीरिताः अभ्राणीव प्रचीयन्ते शब्दाख्याः परमाणवः।। –वा॰प॰ 1/110–11

36. वा॰प॰ 1/112–15

37. वा॰प॰ 1/122

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

क्र.सं. ग्रन्थ का नाम लेखक, व्याख्याकार, संपादक, प्रकाशक इत्यादि

1. काश्मीर शैवदर्शन : बलजित्राथ पण्डित, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू, सन् 1973

2. दार्शनिक विश्लेषण परिचय : हार्स्पस, अनु. भट्टड्ड, गोवर्ध्न, विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1972

3. पाणिनीयव्याकरणसमीक्षा : डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, सं.सं.वि., सन् 1974

4. प्रतिभा दर्शन : हरिशंकर जोशी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1964 ई.

5. भर्तृहरि (प्राचीन टीकाओं के प्रकाश में वाक्यपदीय का एक अध्ययन): के.ए. सुब्रह्मण्य अयर ;अनुवादक– डॉ. रामचन्द्र द्विवेदीद्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, सन् 1981 ई.

6. वाक्यपदीय संबंध समुद्देष (हेलाराज व्याख्या के प्रकाश में एक विवेचनात्मक अध्ययन) : डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत–भारती–शोध संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, सन् 1977 ई.

7. वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड वृत्ति व पद्धति सहित) : के.ए. सुब्रह्मण्य अयर, डेकेन कॉलेज, पूना, सन् 1966 ई.

8. महाभाष्य ;कैयट कृत, प्रदीप, नागेश कृत उद्योग सहितद्ध रू भार्गव शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, सन् 1951 ई.

9. न्यायवार्तिक : एक अध्ययन : दयाशंकर शास्त्री, भारतीय प्रकाशन, कानपुर, सन् 1974

10. Chakrabarti, P .C : The Philosophy of Sanskrit Grammar, University of Calcutta, 1950.

11. Iyer, K.A. Subramania : The Vakyapadiya of Bhartrihari With the Vritti, Chapter-1, English Translation, Deccan College, Poona, 1st Edition, 1965.